द्वितीय अध्याय

शेवडे जी के उपन्यासों का विकासात्मक अध्ययन ---

- व्दितीय अध्याय —

-- शेवडे जी के उपन्यासोंका विकासात्मक अध्ययन ---

(अ) विषय प्रवेश --

शेवडे जी १९२५ से १९७९ तक की सुदीर्घ अवधि में लगातार लिखते रहे। उनका निर्बाध लेखन ही उनकी साहित्य विषयक अटल श्रध्दा का परिचय देता है। निरंतर लेखनकर शेवडे जी ने अपने साहित्य तथा जीवन दर्शन को विशाल एवं विकसित बनाया है। हिन्दी साहित्य की उपन्यास परम्परा में उन्होंने ग्यारह उपन्यासोंका योगदान देकर इस परम्पराको समृध्द बनाने का प्रयास किया है। साहित्य को शेवडे जी कला मानते थे। उनका हृदय कलाकार का हृदय था। इसलिये कला के प्रति ईमानदारी निभाना वे अपना कर्तव्य मानते थे। जीवन और कला का समन्वय स्थापित करना कठिन कार्य है, किन्तु सन्तुलन शेवडेजी की स्थायी प्रवृत्ति थी। उनकी धारणा थी कि जीवनदर्शन और कला के सन्तुलन में ही पूर्ण सत्य का अस्तित्व रहता है। यही चिंतन और दृष्टिकोण उनके समग्र उपन्यासों में दृष्टिगोचर होता है। शेवडे जी हिन्दी के अनन्य उपासक थे। उन्होंने हिन्दी साहित्य को बहुमूल्य कृतियाँ भेंट की है। 'सत्य, शिवं, सुंदरम् के प्रकाश से जगमगाती हुई उनकी कृतियाँ, जिनमें मानव जीवन के कलुष को नष्ट कर काट फेंकने की क्षमता है। साथ ही साथ मनुष्य के सद्गुणों में चार चाँद लगा देने का जादू है।'[१] अपने उपन्यासों के माध्यम से उन्होंने प्रस्तुत किया हुआ जीवन दर्शन अत्यंत गहरा, प्रभावोत्पादक है। प्रस्तुत अध्याय में रचनाकाल की दृष्टिसे उनके उपन्यासों को विभाजित करके हम उनके उपन्यासों के क्रमिक विकास का अनुशीलन करेंगे। रचनाकाल की दृष्टिसे इन उपन्यासों को निम्नप्रकार से विभाजित किया जा सकता है।

---

१ शेवडे, व्यक्तित्व, विचार और कृति - सम्पा. बांकेबिहारी भटनागर, - पृ.५०

(अ) स्वातंत्र्यपूर्व उपन्यास - १.हंसाईबाला (१९३२)

(ब) स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास २.निशागीत (१९४८)

३.मृगजल (१९४९)

४.पूर्णिमा (१९५०)

५.ज्वालामुखी (१९५६)

६.मंगला (१९५८)

७.मग्नमंदिर (१९५९)

८.अधूरासपना (१९६०)

(क) साठोत्तरी उपन्यास - ९.इंद्रधनुष्य (१९६५)

१०.कोराकागज (१९७३)

११.अमृतकुम्भ (१९७७)

(ए) शेवडे जी के स्वातंत्र्यपूर्व उपन्यास --

१९वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से हिन्दी में पश्चिमी उपन्यासों का अध्ययन प्रारंभ हो गया । प्रेमचंद के पूर्व के उपन्यासकार पश्चिमी उपन्यासों की मूल कृतियों से परिचित नही थे। वे उपन्यास को सिर्फ रंजन और सुधार का साधन मानते थे। उपन्यास का वास्तविक स्वरुप प्रेमचन्द के उपन्यासों में ही नजर आने लगा । उनके आगमन से हिन्दी उपन्यास साहित्य में नया युग आरम्भ हुआ । दोहरी संस्कृति और मूल्यों का यह संक्रांति काल था । राजनीतिक नेतृत्व गांधीजी के हाथ में था । वे सत्य और अहिंसा के शस्त्रों को लेकर राजनीति में आये थे। इस काल की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक परिस्थितियोंका साहित्यकारों पर गहरा असर होना स्वाभाविक था । परिणाम स्वरुप उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद, साद्देश्यता, सामाजिकता, मनोवैज्ञानिकता और राष्ट्रीयता की स्थापना करके अपने सामाजिक उत्तरादायित्व को निभाया । श्री अनन्त गोपाल शेवडे जी

भी उन्हीं उपन्यासकारों में से एक थे। काल की कसौटीपर शेवडे जी प्रेमचन्दोत्तर कालीन उपन्यासकार हैं, परंतु उनके उपन्यास के स्वरुप और कला को परखा जाये तो वे प्रेमचंदयुगीन उपन्यासकार ही लगते हैं। उनकी स्वातंत्र्यपूर्व कालखण्ड की एकमात्र रचना 'ईसाईबाला' (१९३२) में उस युग की परिस्थितियाँ तथा गांधीवाद की झलक नजर आती है।

(१) ईसाईबाला (१९३२) --

शेवडे जी की यह प्रथम औपन्यासिक कृति है। विनय मोहन शर्मा जी ने इसे 'रुमानी, मीठी-सी कहानी' कहा है। यह तत्कालिन समाज की पृष्ठभूमि पर खिलती फूलती है। गांधीजी के आदेशों के फलस्वरुप शेवडे ने एक वर्ष के लिए कॉलेज छोड दिया था, सत्याग्रह-संग्राम में सक्रिय भाग लेकर गिरफ्तार भी हो चुके थे। इसी अनुभव की पूँजी के आधारपर लिखा हुआ यह प्रथम उपन्यास है। इस उपन्यास की नायिका एक ईसाई युवती है, नायक एक आदर्शवादी युवक है। दोनों राष्ट्रीय आन्दोलन के सक्रिय कार्यकर्ता हैं। दोनों एक दूसरे से प्रेम करते हैं। आगे चलकर यह प्रेम, विवाह में परिणत होता है। मगर आन्तरजाति विवाह होने के कारण उन्हें समाज से बहिष्कृत किया जाता है। लेकिन वे इरादे के पक्के थे। राष्ट्रीय संग्राम में त्याग और आदर्श के बलपर वे समाज के सामने आदर्श की स्थापना करते हैं। इससे समाज का हृदय परिवर्तन होता है और वही समाज उन्हें स्वीकार कर आशीर्वाद देता है। इस उपन्यास में प्रेम के मीठे आदर्शों के साथ साथ सामाजिक पृष्ठभूमि में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की स्थापना का प्रयास किया है। राष्ट्रप्रेम, स्वतंत्रता और एकता सम्य की माँग थी। इस पार्श्वभूमिपर आंतरजाति विवाह को दिखाकर शेवडे जी ने साम्प्रदायिक एकता को बल दिया है। स्वातंत्र्यप्राप्ति के लिए राष्ट्रप्रेम से ओतप्रोत युवक-युवती को कष्ट में तपाकर शेवडे जी ने भारतीय

युवक - युवतियों के सामने एक आदर्श की स्थापना की है।

शेवडे जी की यह प्रथम औपन्यासिक रचना होनेपर भी आशय और उद्देश्य की दृष्टिसे एक सफल कलाकृति है। 'स्वप्नसिध्दि' शीर्षक से इसका गुजराती में अनुवाद भी हुआ है। १९३३ में सी.पी.एण्ड बेरार लिटररी अकादमी के पुरस्कार से इसे सन्मानित किया गया था। इस उपन्यास में हमें शेवडे जी के दृष्टिकोण, उद्देश्य और मौलिक विचारों का बीजरुप में परिचय होता है, जिसका आगे चलकर वटवृक्ष बना।

(ऐ) शेवडे जी के स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास —

सन १९४७ को भारतीय जनता पराधीनता की शृंखलाओंसे मुक्त हुई। पर आजादी के आनंद के साथ भारत विभाजन के फलस्वरुप हमारे सामने धार्मिक, साम्प्रदायिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक समस्याएँ खडी हुई। अखण्डता का स्वप्न तितर बितर हुआ। एकता की नींव हिल गई और आपसी फूट, भाई-भतिजावाद को बढावा मिला। अहिंसा के मूल मंत्र को तोडकर हिंसा का नर्तन होने लगा। अराजकता की आँधी चली। इससे शेवडे जी जैसा उपन्यासकार द्रवित न होता तो ही आश्चर्य। अुनका हृदय समाज के आक्रोश से विकल हो उठा। इस समय हिन्दी के अन्य उपन्यासकारों ने भी परिस्थितिका यथार्थपरक चित्रण करके अपनी जागरुकता का परिचय दिया है। हिन्दी उपन्यास में नयी प्रवृत्तियों का विकास विशेषकर प्रेमचंद युगीन प्रवृत्तियों का विकास इसी समय में हुआ है। प्रेमचंद युगीन या प्रेमचंद के बाद में जिन लेखकों ने लिखना सुरु किया था, अुनका अधिकांश लेखन स्वाधीनताके परवर्ती काल में हुआ है। शेवडे जी तो प्रेमचंद कालीन थे। मगर 'हंसाईबाला' (१९३२) का अपवाद छोडकर अुनके अन्य सभी उपन्यास स्वातंत्र्योत्तर काल में प्रकाशित हुअे हैं। जैसे 'निशागीत' (१९४८), 'मृगजल' (१९४९), 'पूर्णिमा' (१९५०), 'ज्वालामुखी' (१९५६), 'मंगला' (१९५८), 'अधूरा सपना' (१९५९), 'मग्नमंदिर' (१९६०)।

'हंसाईबाला' (१९३२) के प्रकाशन के बाद शेवडे जी के लेखन में दस वर्ष का अंतराल नजर आता है। स्वयं शेवडे जी ने भी इस लेखन खण्ड को स्वीकार किया है। इस काल खण्ड में उन्होंने एम.ए. किया। 'इण्डियन्डण्ट' को सुस्थिर करने में व्यस्त रहे। हिन्दी में लेखन करने की तमन्ना होकर भी फुर्सत के अभाव नहीं हो पाया। सन १९४२ के 'भारत छोडो' आन्दोलन के सिलसिले में वे गिरफ्तार हुये। जेल जाने के बाद हिन्दी लेखन का सिलसिला दुबारा आरंभ हुआ। जेलयात्रा को वरदान मानकर उन्होंने साहित्य सर्जन किया और दस वर्षों के अंतराल की मानो क्षतिपूर्ति ही कर डाली। जेलयात्रा की तीन साल की अवधि में उन्होंने 'निशागीत', 'मृगजल', 'पूर्णिमा', उपन्यासोंकी रचना की। सन १९४५ को जेल से रिहा होने के बाद 'इण्डिपेण्डण्ट' के माध्यम से बदलती परिस्थितियों का स्वागत करते हुये अनेक लेख लिखे। स्वतंत्रता के बाद उन्होंने जेल में लिखे उपन्यासों के प्रकाशन की योजना बनायी। इस योजना के अनुसार 'निशागीत' (१९४८), 'मृगजल' (१९४९) तथा 'पूर्णिमा' (१९५०) में प्रकाशित किये। ये सभी उपन्यास सामाजिक विषयवस्तु को लेकर उपस्थित हुये हैं। क्योंकि इन उपन्यासों की रचना के समय साहित्य के प्रति सरकार का रुख सख्त और नियम भी कडे थे। इस स्थिति के परिपार्श्व में ही इन रचनाओंका अनुशीलन करना आवश्यक है।

(२) निशागीत (१९४८) --

रचना काल की दृष्टि से शेवडे जी की यह दूसरी कृति है। तत्कालिन समाज के विषाक्त वातावरण में उदात्त और सुरुचिपूर्ण प्रेम का उदाहरण प्रस्तुत करना 'निशागीत' उपन्यास का उद्देश्य रहा है। उपन्यास का नायक मधूसुदन एक सेवाभावी डाक्टर है। माँ की अन्तिम इच्छा के अनुसार वह डाक्टर बनकर ग्रामीण इलाके में नारी जाती की सेवा कर रहा है। इस

उपन्यास की नायिका सुशिला एक बाल विधवा है। जो नर्स बनकर समाज की सेवा कर रही है। डाक्टर मधुसूदन और नर्स सुशिला एक दूसरे को बहुत चाहते हैं। मगर उम्र और सौंदर्य में अन्तर होने के कारण शुरु शुरु में वे अपना प्रेम व्यक्त करने में संकोच करते हैं। मगर कुछ दिनों के बाद डाक्टर मधुसुदन बारुद के विस्फोट में अंधा होता है। उसवक्त अंधे की लाठी बनने के लिए समाज की पर्वा न करते हुवे नर्स सुशिला उसका साथ देती है। इसमें आरम्भ से अन्त तक आदर्श ही आदर्श है। यहाँ प्रेम विषयक दृष्टिकोण की मौलिक व्याख्या करने का प्रयास किया गया है। प्रेम वास्तव में आत्मा और हृदय की वस्तु है, उसका शारीरिक सौंदर्य, आयु या वर्ण आदि से बहुत कम सम्बन्ध होता है। प्रेम के आदर्श रुप के साथ ही साथ मध्यप्रदेश के अविकसित प्रदेश की स्वातंत्र्यपूर्व काल की सामाजिक स्थिति का चित्रण कर लेखक ने तत्कालीन वातावरण को सजीव बनाया है। त्याग, निस्वार्थ प्रेम, सेवाभाव के आदर्शगुणों से विभूषित भारतीय नारी का सुन्दर चित्र प्रस्तुत कर नारी को महत्ता प्रदान की गई है। रस, रोचकता, गठीत शैली के कारण उपन्यास की विषयवस्तु अत्यंत सुन्दर तथा भव्य हो उठी है। इस दृष्टिसे "निशागीत' उपन्यास शेवडे जी के कृतित्व का अभिनव सौंदर्य है।"[१] 'ईसाईबाला' की तुलना में शिल्प एवं शैली की दृष्टि से यह प्रौढतर रचना है।

(३) मृगजल (१९४९) --

'निशागीत' की तुलना में क्लात्मक नजर आनेवाला 'मृगजल' उपन्यास कलाकार के जीवन के लिए समर्पित है। इस में चार प्रमुख पात्र हैं। एक पुरुष आर्टिस्ट और तीन स्त्रियाँ, जो भिन्न भिन्न स्वभाव की हैं। अशोक नीलकण्ठ एक मशहूर चित्रकार है। उसके चित्रों को देखकर धनी परिवार की मायादेवी अशोक पर आसक्त होती है - और उसे अपनी अमीरी के बल पर

---

१ निशागीत - पृ.९ - प्रस्तावना से उद्धृत - उदयशंकर भट्ट।

दास बनाना चाहती है। अशोक मायादेवी के इस प्रस्ताव को ठुकरा देता है। उसके बाद मरियम नामक ईसाई युवती से उसकी मुलाकात होती है। मरियम उसे जीवनवादी बनाना चाहती है, तो अशोक अपनी कला पर अटल है। आगे न्यायाधीश की लडकी अरुणा से अशोक की शादी होती है। मगर मरियम की निष्ठा उसे निरंतर बेचैन बनाती है। वह बीमारी का शिकार बनता है। आपरेशन में पुनर्जन्म होने के बाद मरियम उससे मिलती है। अशोक, किये का पछतावा करके उसका स्वीकार करता है। मृगजल के पीछे दौडने की अपनी गलती पर उसे पछतावा होता है।

विषयवस्तु, कथानक, घटनाक्रम, चरित्रचित्रण और शिल्प सभी पर विशेष रुप से ध्यान दिया गया है। शिल्प एवं शैली दोनों दृष्टियों से 'मृगजल' उपन्यास अपने पूर्ववर्ती उपन्यासों की तुलना में अधिक कलात्मक एवं रोचक नजर आता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद प्रकाशित उपन्यासों में सर्वश्रेष्ठ रचना के रुप में मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद की ओर से इसे प्रादेशिक पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है। इस कृति पर आधारित रेडिओ नाटक बहुचर्चित रहा था। नारी की सेवा और त्याग जैसे गुणों के साथ ही साथ नारी स्वभाव के विविध पहलुओंको भी उजागर किया गया है।

(४) पूर्णिमा (१९५०)

'पूर्णिमा' अपने पूर्ववर्ती उपन्यासों की तरह सोद्देश्य रचना है। पूर्णिमा कालेज की छात्रा है। स्वभाव से चंचल होनेवाली पूर्णिमा अपनी स्वच्छन्दता के कारण लांछित होती है। फिर भी उपन्यास का नायक विनयकुमार, जो कि आदर्शवादी युवक है, जानबूझकर लांछित पूर्णिमा को स्वीकार करता है। 'पूर्णिमा' उपन्यास शिक्षा जगत को उजागर करता है। इसकी नायिका 'पूर्णिमा' का चित्रण मानसिक धरातलपर हुआ है। मनुष्य का मन एक ऐसी पहेली है, जिसे सुलझाना सहज सम्भव नहीं होता। इसी का

मार्मिक चित्रण मनोवैज्ञानिकदृष्टिसे किया गया है। पाप,पुण्य, पैसा,प्रतिष्ठा, प्रेम जैसी बातोंपर अपना मन्तव्य व्यक्त कर उपन्यासकार शेवडे जी ने हमारे समाज की तीखी समीक्षा की है। उनका कहना है कि "सभ्यता, शिष्टाचार और संस्कृति के नामपर यह सब सामाजिक ढोंगधतूरा चलता है।"[१] 'पूर्णिमा' का स्वस्थ सामाजिक दृष्टिकोण पाठकों को प्रभावित करता है। इसमें शेवडे जी का उदार समाज सेवक तथा सुधारक प्रतिबिंबित हुआ है। नारी की गलतियों को स्वीकार कर उनका स्वीकार करने में ही पुरुषार्थ है। इस धारणा को प्रस्तुत कर नारी के प्रति उदारतासे तथा प्रगतिशील नजरिये से देखने की आवश्यकता को शेवडे जी ने बडे कुशलतासे एवं मार्मिक ढंग से समझाया है। युग के साथ विचारों को बदलने की प्रगतिशीलता का 'पूर्णिमा' विशेष है। यहाँ हमे उनकी उपन्यास कला पूर्ववर्ती उपन्यासों से अधिक प्रौढ होती नजर आती है।

(५) ज्वालामुखी (१९५६)

पूर्ववर्ती उपन्यासों की तुलना में 'ज्वालामुखी' उपन्यास अलग विषय वस्तु लेकर प्रस्तुत होता है। इसकी विषयवस्तु सन १९४२ की अगस्त क्रान्ति पर आधारित है। शेवडे जी स्वयं इस क्रान्ति के सेनानी थे। उस क्रान्ति का आँखों देखा हाल उस में चित्रित किया है। सन १९४२ की 'अगस्त क्रान्ति' उपन्यास का वातावरण है। स्वातंत्र्योत्तर कालीन हिन्दी राजनीतिक उपन्यासों में 'ज्वालामुखी' एक उल्लेखनीय उपन्यास है। अभयकुमार उपन्यास का नायक है। वह शोध छात्र है। पीएच.डी. के लिए अनुसंधान कार्य में व्यस्त है। इसकी निष्ठा, आदर्श,जीवनदृष्टि से प्रभावित होकर एक न्यायाधीश की पुत्री विजया उससे विवाह करती है। उनके विवाह के कुछ दिनों के बाद ही सन १९४२ का 'भारत छोडो' आन्दोलन छिड जाता है। अभयकुमार राष्ट्रप्रेमी होने के कारण इस आन्दोलन में कूद पडता है। अंग्रेज उसे गिरफ्तार कर फाँसी की सजा फर्माते हैं। इधर अभय फाँसी के फँदे पर लटकाया जाता है, उधर उसकी पत्नी विजया

---

१ शेवडे - पूर्णिमा - पृ.२२३

पुलिस की लाठीमार की शिकार होकर मर जाती है। दोनों का एक ही चिता पर दाह संस्कार होता है। नायक की बुढिया माँ जीवन से विरक्त होकर काशी जाती है और १५ अगस्त को भारत को आजाद देखकर सपने की परिपूर्ती के खुशी में दुनिया से विदा लेती है। शेवडे जी के शब्दों में कहा जाये तो " इसमें भारतीय स्वातंत्र्य की प्रसव वेदना का चित्रण है। आनेवाली पीढियाँ जान सके कि जिस स्वतंत्रता का हम उपभोग कर रहे हैं, उसकी हमें क्या किमत चुकानी पडी और उसे टिकाने के लिए, मजबूत बनाने के लिए हमे क्या करना चाहिये इस पर सोचे यह इसका उद्देश्य है।"[१] देशभक्ति, स्वातंत्र्य, मृत्यु जैसी बातों का उपन्यास में किया गया विवेचन विचारणीय है। भारतीय संस्कृति एवं जीवन प्रणाली का दिव्य स्वरुप इस उपन्यास में नजर आता है।

उपन्यास का नायक व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर उठकर समाज, राष्ट्र की भलाई सोचता है, यह उसके चरित्रगत विकास का द्योतक है। उपन्यास की कथावस्तु सुगठित बनी है। नारी का पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर सहयोग देना, नारी की विकासात्मकता का ही द्योतक है। भारतीय नारी को कर्तव्यपरायण नारी के रुप में चित्रित किया गया है। पूर्ववर्ती उपन्यासों की तुलना में 'ज्वालामुखी' वैचारिक, मौलिक एवं उद्देश्यों की महत्ता के कारण अधिक विकसित और प्रौढ नजर आता है। तभी तो इसे नेशनल बुक ट्रस्ट व्दारा भारतीय संविधान में उल्लेखित सभी चौदह भाषाओं में अनुदित किया गया है। 'ज्वालामुखी' के सफलता का यह द्योतक है। प्रकाशकीय में अंकित विचारों के अनुसार " 'ज्वालामुखी' में डमरु की डमडम की प्रतिध्वनि सुनाई देती है। मुरली का कोमल नाद नगाडे के शंखनाद में परिवर्तित हो जाता है और हमारे सामने भारतीय आत्मा की मुक्ति पाने की छटपटाहट और तडप शब्दों में साकार हो उठती है।"[२]

---

१ शेवडे - व्यक्तित्व, विचार और कृति - सम्पा.- बाँके बिहारी भटनागर - पृ.७६

२ शेवडे - ज्वालामुखी - के प्रकाशकीय से उद्धृत

(६) मंगला (१९५७)

' निशागीत ' और ' मृगजल ' की तरह कलाकार के जीवन को समर्पित ' मंगला ' एक विशुध्द कलाकृति है। जिसका राजनीति से रंचमात्र भी संबंध नहीं है। प्रेम, संगीत तथा जीवन दर्शन पर आधारित यह उपन्यास एक अंधे संगीतज्ञ की कहानी है। उपन्यास का नायक पंडित सदानंद एक अंधा संगीतज्ञ है। नायिका मंगला, मंगल ग्रह की अवकृपा से पीडित युवती है। अंधश्रद्धा समाज में मंगला की निरंतर उपेक्षा होती रही है। किसी पंडित ने उसके उद्धार के लिए अंग से विवाह का उपाय बताया। इसलिए उसके घरवाले अंधे सदानन्द से उसका विवाह कर देते हैं। मगर पति अंधा होने की बात उसे अक्सर अखरती रहती है। अंधे पति व्दारा उसके सौंदर्य की उपेक्षा उसे बर्दास्त नहीं होती। परिणाम स्वरुप वह चंद्रकांत नामक एक धनी युवक की ओर आकर्षित होती है। परंतु मृगजल से कौन संतुष्ट हुआ है ? कुछ ही दिनों में पछतावा कर वह पुन: सदानन्द के पास आती है। देखते-ही-देखते सदानंद के तानपुरे की धुन में उसके स्वर विलिन हो जाते हैं।

' मंगला ' में कलाकार की जिन्दगी को स्वर देने के साथ-ही-साथ नारी की व्यथा-वेदनाओं को प्रकट करने का उद्देश्य स्पष्ट नजर आता है। पूर्ववर्ती उपन्यासों की तरह शेवडे जी का समाजसुधारक यहाँ भी विद्यमान है। संगीतकार के व्यथावेदनाओं और लगन का चित्रण उच्च कोटिका बना है। शेवडे जी ने समाज के उपेक्षित अंधोंका अंतरंग खोल दिया है। उनके प्रति सहानुभूति बरताने का संकेत दिया है। उनके पूर्ववर्ती उपन्यासों की तुलना में ' मंगला ' में सामाजिक समस्याओंका चित्रण और उसे सुलझाने के प्रति पर्याप्त गंभीरता बरती गयी है। ' मंगला ' मानव की व्यथा तथा मनोव्यथाओंका महाकाव्य है। इसी कारण ' मंगला ' ' नेत्रहिनों की गीता ' बन गया है। उद्देश्य, विचारदर्शन, संवेदना और संगीतकी सारी सूक्ष्मताओं साकार करने में शेवडे जी को ' मंगला ' में पूर्णत: सफलता प्राप्त हुई है। इस पर फिल्म भी बनायी गयी थी तथा ' ज्वालामुखी '

की तरह ब्रेयल लिपि में इसका संस्करण प्रकाशित हुआ था ।

(७) भग्नमन्दिर (१९६०)

'ज्वालामुखी' की सफलता के बाद लिखा दूसरा राजनीतिक उपन्यास है 'भग्नमंदिर'। 'ज्वालामुखी' की पृष्ठभूमि स्वातंत्र्यपूर्व ४२ की अगस्त क्रान्ति है, तो 'भग्नमंदिर' की पृष्ठभूमि स्वातंत्र्योत्तर भारत की स्थिति है । स्वातंत्र्योत्तर काल में त्याग, देशभक्ति, नैतिकता, सच्चाई जैसे जीवन मूल्यों का ह्रास हुआ । हमारे राजनीतिज्ञ मस्त होकर अपने उल्लू सीधे करने में मग्न रहे । स्वतंत्रता के लिए जान हाथेली पर लेकर लडनेवालों को देश एक भग्नमंदिर जैसा विरूप नजर आने लगा । भारतवर्ष में आये इस राजनीतिक एवं सामाजिक परिवर्तन को शेवडे जी ने करीब से देखा और उनका समाज सेवक, साहित्यिक व्यथित हो उठा । हृदय में इससे जो टीस जगी, उससे ही 'भग्नमंदिर' बना । पूरणचंद जोशी राज्य के बुजुर्ग राजनीतिज्ञ हैं । सत्ता की होड में उनका दावेदार नजर आना असम्भव है । यही कारण है कि वे मुख्यमंत्री के रूप में राज्य की बागडोर संभालते हैं । लोककर्म विभाग के मंत्री मनमोहन बाबू, डिप्टी सेक्रेटरी रघुनाथ सहाय आदि की सहायता से सत्ता को निरंकुश बनाकर ठेके, खदानें, एजेन्सियाँ आदि पर एकाधिकार स्थापन करते हैं । 'युगान्तर' जैसा समाचार पत्र चलाकर वे अपने प्रतिद्वंद्वी मणिभाई को परास्त करते हैं । दलबन्दी, रिश्तेदारों की नियुक्तियाँ आदि से सारा राज्य भ्रष्टाचार से कुरेदा गया है, जिससे राज्य राज्य न रहकर एक भग्नमंदिर' जैसा खण्डहर मात्र बन गया है । डॉ. ब्रजभूषण सिंह के शब्दों में "'भग्नमंदिर' एक प्रदेश के ऐसे मुख्यमंत्री के प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार की कहानी चित्रित है, जो स्वतंत्रता के पूर्व त्यागी, राष्ट्रभक्त और कर्मठ सेनानी थे, पर वही सत्ता प्राप्ति के उपरान्त भ्रष्टाचार के गर्त में फँस जाते हैं।" 'भग्नमंदिर' में आदर्शवादी 'ज्वालामुखी' का नायक राष्ट्रीय चरित्र के सार्वत्रिक पतन को देखकर विफलवातावरण में मानों पुनर्जन्म पाता है ।

` मग्नमंदिर ` अपने समय के संदर्भों को लेकर चलनेवाला उपन्यास होने के कारण इसे समकालिन राजनीतिक जीवन की कामेंट्री कहना उचित होगा। इसमें आसो देखे हाल में होनेवाली बारीकी जैसी है वैसे ही व्यंग्य में होनेवाली मार्मिकता भी। विफलता में भी गांधीदर्शन का समर्थन और आशा का स्वर गूँजता है।[१] ` मग्नमंदिर ` शेवडे जी की स्वातंत्र्योत्तर पृष्ठभूमि पर लिखे गये उपन्यासों में सर्वश्रेष्ठ कृति है। डा.गुंजीकर जी ने इसकी तुलना यशपाल के ` झूठा सच ` से की है और वह उचित भी है।

(८) अधूरा सपना (१९६०)

शेवडे जी ने इसे पहले ` परिक्रमा ` शीर्षक से लिखा था। पर प्रकाशन के समय इसे ` अधूरा सपना ` नाम रखा गया। यह उनका एकमात्र लघुउपन्यास है। इसमें लघुउपन्यास की सभी विशेषताएँ विद्यमान नजर आती हैं। मनुष्य अपनी जिन्दगी में अनेक अधूरे सपनों को संजो कर रखता है। उनकी मधुर स्मृतियाँ, खुमारी उसका जीवनाधार बन जाती है। प्रस्तुत उपन्यास में मनुष्य की इस मनोवृत्ति का सुंदर दर्शन मिलता है। उपन्यास का नायक गिरीश एक संन्यासी है। प्रेम की विफलता से संसार से विरक्त बना है। उपन्यास की नायिका सुहासिनी अनिंद्य सुंदरी है। अपने अहं को पहुँची ठेस का बदला लेना चाहती है। उसका विवाह हो चुका है। पर फिर भी उसके मन में एक अव्यक्त आशा है। प्रेम के अधूरे सपने को फिर से पाने के लिए शेष जिन्दगी आशा में गुजारता है। उसका अधूरा सपना ही उसका संबल बना है। बारह वर्षों की लम्बी अवधि में भी वह अपनी प्रियतमा को भूल नहीं पाता। जब उससे मिलता है तब उसके पति के नाम चेक रखकर चला जाता है। यहाँ शेवडे जी की लेखनी दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक गुत्थियों को सुलझाने में व्यस्त नजर आती है। उपन्यासकार ने स्वामी आत्मानन्द का चरित्र प्रस्तुत कर वर्तमान जीवन में कर्म, कर्तव्य एवं भविष्य में गहन आस्था के साथ जीने का महान संदेश दिया है।"[१] स्त्री और पुरुष के प्रेम का अत्यंत भव्य और

---

१ हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास - प्रतापनारायण टण्डन - पृ.१९८

उदात्त स्वरुप इस उपन्यास में दिखाई देता है। चरित्र चित्रण, कथावस्तु, भाव और भाषा सभी दृष्टियों से इनके पूर्ववर्ती उपन्यासों की तुलना में 'अधूरा सपना' उपन्यास सफल कलाकृति है। सामाजिक एवं राजनीतिक उपन्यास लिखनेवाले उपन्यासकार शेवडे जी की आध्यात्मिक अध्यवसायिता का यहाँ हमें परिचय मिलता है।

(औ) शेवडे जी के साठोत्तरी उपन्यास --

आज कल बडा मंथन चल रहा है, विचारों का और भावनाओंका भी। यह मंथन विश्व व्यापी है। पुरानी दुनिया बदल रही है। मूल्यों में परिवर्तन आ रहा है। आणविक शक्ति की प्राप्ति के कारण मानव की प्रगति अलौकिक और अकल्पित हो उठी है। विज्ञान की इस असाधारण और अद्भूत प्रगति ने आज सारे विश्व में एक जबर्दस्त हलचल मचा दी है, जिसका हमारे चिन्तन तथा जीवन पर भी बहुत बडा असर हुआ है। ऐसी स्थिति में उत्साह तथा उमंग के बदले मन में आतंक है। मानव विवेक और संयम खो बैठा है। ऐसी स्थिति में आचार्य विनोबा भावे जी के शब्दों में "विज्ञान और अध्यात्म की शक्ति को जोडने का कार्य साहित्यिकों को ही करना है।[१]" विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय हो और मानवजाती को संहार से बचाओ, यही सभ्य की माँग है। ऐसी स्थिति में साहित्यकार का काम केवल मनोरंजन करना नहीं है, अपितु लोगों में शक्ति, सामर्थ्य, प्रेरणा तथा चेतना निर्माण कर उन्हें क्रियाशील बनाना होता है। सभ्य की इस माँग को साठोत्तरी उपन्यासकारों ने पूर्ण किया है। इस कालखण्ड में शेवडे जी के तीन उपन्यास, 'इंद्रधनुष्य' (१९६५), 'कोराकागज' (१९७३), 'अमृतकुम्भ' (१९७७) में प्रकाशित हो चुके हैं। शेवडे जी का स्वभाव ही समन्वयवादी था। वे केवल साहित्यकार ही नहीं बल्कि श्रेष्ठ उपन्यासकार, उत्कृष्ट पत्रकार तथा गंभीर विचारक भी थे। अब विज्ञान का उपयोग निर्माण के लिए, कल्याण और मांगल्य के लिए ही किया जायेगा तो

---

१ शेवडे व्यक्तित्व, विचार और कृति - सम्पा.-बाँकेबिहारी भटनागर, पृ.८५

उससे खतरा या खोप का डर नहीं है यही उनकी धारणा थी। इस पार्श्वभूमि पर शेवडे जी ने अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय, सामाजिक समस्याओं और उन्हे सुलझाने की दृष्टि से आवश्यक संकेत आदि के संदर्भ में साठोत्तरी उपन्यासों में उन्होंने अपना चिंतन निर्भिकता से प्रकट किया है।

(९) इंद्रधनुष्य (१९६५)

शेवडे जी की उपन्यास परम्परा की यह नौंवी कडी है। इस उपन्यास में नयी विचार धारा पुराने मूल्यों के साथ लोहा लेती दृष्टिगोचर होती है। शेवडे जी की वैचारिक विचार धारा का यह विकासात्मक रुप है। नैतिक मूल्यों का जो बहुमुखी -हास हो रहा है, उसका प्रतिबिंब ' इंद्रधनुष्य ' में स्वाभाविक रीति से आ गया है। जीवन के राग विराग का प्रतीक ' इंद्रधनुष्य ' है। दर्शनशास्त्र के विद्वान डॉ.ज्ञानशंकर पठन-पाठन, लेखन, चिन्तन आदि में इतने व्यस्त रहते हैं कि उन्हें अपनी पत्नी, गृहस्थी का ख्याल तक नहीं होता। इधर पत्नी वीणा मातृत्व के सुनहले ख्वाबों में खोयी रहती है। कुछ दिन गुजर जाने के उपरान्त अपनी खाली गोद उसे खाने लगती है। अवसर पा.कर वीणा दलीप के करीब आती है। अपने आपको सँवर नहीं पाती। डॉ.ज्ञानशंकर मद्रपूर से लौट आते ही , अपनी पत्नी में परिवर्तन अनुभव करते है। एकदिन धोबी को कपडे देते हुअे दलीप का वह रुमाल डाक्टर साहब के हाथ लगता है, जिससे दलीप वीणा के गुप्त संबंधों का राज खुलता है। बदनामी की कल्पना मात्र से वे पसीना-पसीना हो जाते थे। निरंतर बेचैन रहते थे। पर सौभाग्य से डा.सुमन्त तथा डा.सुमित्रा उनकी मदद करते है। वे डाक्टर साहब को उनके दोषों से अगाह कर देते हैं। और फिर डाक्टर ज्ञानशंकर वीणा के साथ सुख की जिन्दगी यापन करने लग जाते हैं।

शेवडे जी ने इस उपन्यास के माध्यम से " सेक्स, स्त्री-पुरुष संबंध, शैक्षणिक जगत का -हास या पतन, नैतिकता का -हास, मनुष्य का स्वार्थ जैसे कितने ही रंगों के पट खोले है। जीवन की यह विविधता इंद्रधनुषी नहीं तो

क्या ?" [१] इसमें वर्णित समस्याएँ और उन्हें सुलझाने के उपाय आदि की चर्चा होने के कारण प्रस्तुत उपन्यास आदर्शोन्मुख यथार्थवाद के कोटी में रखा जा सकता है। इस उपन्यास तक आते आते शेवडे जी के विचारों में मौलिकता, प्रौढ़ता और वर्णन कौशल्य में स्वाभाविकता आ गयी है। पूर्ववर्ती उपन्यासों में चर्चित विषयों को इस उपन्यास में अधिक गहराई और मौलिकता से चित्रित किया गया है। गृहस्थ जीवन के विभिन्न पहलुओं के परिप्रेक्ष्य में स्त्री-पुरुष संबंध, उससे उठनेवाले संघर्ष आदि का चित्रण कर मानव की मनोवृत्तियों की व्याख्या का प्रयास किया गया है।

(१०) कोरा कागज (१९७३)

साहित्यकार, शेवडे जी के खून का अभिन्न अंग है। साहित्यकार की आत्मा को वे अपनी निजी अनुभूतियों से जानते थे। 'कोरा कागज' यह एक ऐसे साहित्यकार की कहानी है, जो साहित्य को ही सबकुछ मानता है। साहित्य उसके लिए आत्मा की पुकार है। उपन्यास का नायक निरंजन होश सम्हालते ही रीता का आशिक बना है। मगर प्रेमभंग के दर्द से इस कदर टूट जाता है कि आजीवन यायावरी करने के बाद भी वह जीवन के सही अर्थ एवं रुप को न जान पाता है न अपना भी। इसी टीस के कारण उसका साहित्यकार व्यक्तित्व साकार हो उठा। उसे अपनी कलम पर भरोसा है, अत: लिखना धर्म मानकर उसी के बलपर जीवन यापन का प्रयास करता है। कुछ करके दिखाने की उमंग उसे असिस्टंट कमिशनर के ओहदे पर विराजमान करती है। पर पद, प्रतिष्ठा, अधिकार, जैसी बातों में निरंजन उलझा रहता तो साहित्यकार कैसे बनता ? इस घुटन से मुक्त होने के लिए अपने पद का इस्तिफा देकर आत्मा की तलाश में गृहत्याग देता है। बम्बई आकर निरंजन भूमिगत रहकर सुंदर सुंदर कहानियाँ लिखता है। आकाशवाणी, पत्र-पत्रिकाएँ चित्रपट निर्माता, पाठक आदि को उसकी कथाओंका इंतजार होता है। कुछ

---

१ शेवडे : व्यक्तित्व एवं कृतित्व - डा. सुनीलकुमार लवटे - पृ.५०

दिनों के बाद देश की साहित्यिक गतिविधियों का वह केन्द्र बन जाता है। फिर प्रतिष्ठा का जाल उसे कुरेदने लगता है। जिन्दगी की सारी खुशियाँ के होते हुअे भी ' अन्तिम प्रश्न ' की तलाश के कोरे कागज उसे बेचैन बनाते है और इन सब से पिंड छुडाने के लिए वह पुन: भूमिगत होता है, अन्तिम प्रश्न के उत्तर की खोज में।

निरंजन की यह कथा ' स्व ' हितदक्ष रचनाकार की जीवन गाथा है। जो भूख और अपमान तथा दरिद्रता जैसी बातों को सहेगा पर किसी भी कीमतपर अपने ' अहं ' को पहुँची ठेस उसे बर्दास्त नहीं होगी। जीवन में अनेक प्रलोभनों के बावजूद भी वह अपने साहित्यकार के ' स्व ' की रक्षा करता है। साहित्यकार की बेचैनी एक अध्यात्मिक रहस्य बनकर सामने आती है। सुखदु:ख की कल्पना पाप-पुण्य की व्याख्या, दैववाद तथा दार्शनिक विचारों का नया दृष्टिकोण आदि का ' कोरा कागज ' में विकासात्मक रुप नजर आता है। इसका केनवास बहुत व्यापक है, अनेक पात्रों के माध्यम से यह एक सरस, रोचक और हृदय स्पर्शी साहित्यिक कलाकृति है। अनेक घटनाओं तथा पात्रों के बावजूद भी ' कोरा कागज ' उपन्यास आदि से अन्त तक पठनीय है।

(११) <u>अमृतकुम्भ</u> (१९७७)

शेवडे जी का यह अन्तिम उपन्यास, अुनके पूर्ववर्ती उपन्यासों की तुलना में सर्वश्रेष्ठ रचना है। मनुष्य अपनी उत्तरार्ध की जिन्दगी में अन्तर्मुखी होकर कुछ हदतक आध्यात्मिक भी होता है। शेवडे जी का ' अमृत कुम्भ ' उपन्यास इसी का द्योतक है। ' कोरा कागज ' में निरंजन का भटकना तथा ' अमृतकुम्भ ' में सत्यकाम एवं पालीन का विश्वपर्यटन आध्यात्मिक समाधान से प्रेरित है। आरंभ में गांधीवादी शेवडे जी की परिणती विनोबा के निकट संपर्क में सर्वोदयी बन गयी इसका स्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत उपन्यास में प्रतिबिंबित चिन्तन में मिलती है।

ऊनका यह अन्तिम उपन्यास दर्शन से परिपूर्ण एक श्रेष्ठ उपन्यास समझा जाता है।

' अमृतकुम्भ ' सत्यकाम और पालीन के मीलन की कथा है। उपन्यास का नायक सत्यकाम अनाथाश्रम में पला है। शिक्षा दीक्षा ग्रहण कर रेयान फैक्टरी में बडा अधिकारी बन जाता है। सत्यकाम अनुभव करता है कि फैक्टरी के प्रदुषण से पूरा गाँव पीडित है। वह अपने आप को अपराधी अनुभव कर त्यागपत्र देता है। माँ की अन्तिम इच्छा तथा आदेश के नुसार भारत देखने के लिए भ्रमण करता हरिपुरा आता है। यहाँ उसकी भेट पालीन नामक अमरिकी युवती से होती है। नसीब की मारी पालीन आत्मा की शान्ति के लिए भारत आयी है। दोनों मिलकर विश्वपर्यटन कर दुनिया को अजमाते हैं । अन्त में दोनों देश, धर्म, जाति के अपने बेगाने के भेद को भूलकर मानव धर्म को स्वीकार कर एक विश्व की कल्पना में एक दूसरे के लिए समर्पित होते हैं। सत्यकाम और पलीन की यह कथा पूर्व पश्चिम संस्कृति का समन्वय है। इस समन्वय से ही विश्वशांति प्रस्थापित हो सकती है। इसलिये ' अमृतकुम्भ ' के माध्यम से शेवडे जी ने ' वसुधैव कुटुम्बकम् ' के विचार प्रस्तुत किये हैं। विश्वमानव एवं महामानव धर्म को पृष्टि दी गयी है। उपन्यास का उद्देश्य भविष्य में मानवता की स्थापना करना रहा है। इसके अलावा अन्य राष्ट्रों की आन्तरिक परिस्थिति की मार्मिक आलोचना कर भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता को दिखाने का सफल प्रयास किया है। अपनी पूर्ववर्ती औपन्यासिक कृतियों के परिप्रेक्ष्य में ' अमृतकुम्भ ' वैचारिक धरातलपर एक श्रेष्ठ कृति समझी जायेगी।

(आ) निष्कर्ष --

किसी गायक कलाकार की माँती किये गये नित्य रियाझ ने शेवडे जी के साहित्यकार को निरंतर प्रौढ से प्रौढतर बनाया है। सन १९३२ से १९७७ तक उनकी साहित्य सरिता नित्य प्रवाही रही है। इतना ही नहीं तो उसका उत्तरोत्तर विकास भी हुआ है। उपन्यासों के माध्यम से उन्होंने सत्यं, शिवं,

सुदरम् की हिमायत की है। करुणा, अहिंसा, हृदयपरिवर्तन जैसी बातों को चित्रित कर उन्होंने अपने उपन्यास साहित्य को गांधीवादी आदर्शों का संवाहक बनाया है। विश्वशांति, विश्वबंधुत्व की भावना का समर्थन तो शेवडे जी के उपन्यासों की महानतम उपलब्धि है। उनके सभी उपन्यास हमारे समाज के ज्वलंत चित्र हैं। काल की कसौटी पर शेवडे जी प्रेमचन्दोत्तरकालिन उपन्यासकार है, परंतु उनके उपन्यास के स्वरुप और कला को परखा जाय तो वे प्रेमचंद युगीन उपन्यासकार ही लगते हैं। स्वातंत्र्यपूर्व कालखण्ड की उनकी एकमात्र औपन्यासिक रचना 'ईसाईबाला' में उस युग की परिस्थितियाँ तथा गांधीवाद की झलक नजर आती है। उनका दृष्टिकोण, उद्देश्य और मौलिक विचारों का यहाँ बीज रुप में परिचय मिलता है। स्वातंत्र्योत्तर और साठोत्तरी कालखण्ड के उपन्यासों में इन्हीं विचारों का वटवृक्ष बना नजर आता है। उपन्यास कला की दृष्टिसे स्वातंत्र्योत्तर काल की रचनाएँ प्रौढतर बनी हुअी हैं। रस, रोचकता, गठितशैली के कारण उपन्यासों की विषयवस्तुएँ सुन्दर और भव्य बनती गयी हैं। उनके अधिकतर उपन्यास सामाजिक विषयवस्तु को लेकर उपस्थित हुअे हैं। नारी के प्रति प्रगतिशील नजरिये से देखना, पाप-पुण्य की नयी व्याख्या जैसी बाते शेवडे जी के प्रगतिशील होने का प्रमाण देती है। उनके राजनीतिक उपन्यासों में समकालिन जीवन की झाँकियाँ प्रस्तुत हैं। उनमें देशभक्ति, स्वातंत्र्य, मृत्यु जैसी बातों का विवेचन विचारणीय है। साठोत्तरी उपन्यासों में, अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय, सामाजिक समस्याओं को सुलझाने की पद्धति आदि के संदर्भ में शेवडे जी के मौलिक विचार बडे निर्भिकतासे प्रकट हुअे हैं। उनकी अन्तिम कृति 'अमृतकुम्भ' इस का स्पष्ट प्रमाण है।